हितोपदेश

नीतिकथाओं एवं उपदेशात्मक पशुकथाओं का संस्कृत–साहित्य में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत साहित्य में इनका प्रचलन अति प्राचीन काल से चला आ रहा है। लौकिक संस्कृत ही क्या वैदिक संस्कृत साहित्य में भी इस प्रकार की कथाओं का यत्किञ्चित अस्तित्व दृष्टिगोचर हो ही जाता है। ऋग्वेद तथा उपनिषद् आदि में बीजरूपेण इस प्रकार के सहज एवं स्पष्ट वर्णन परिलक्षित होते हैं, जिनका विकास उत्तरोत्तर चरम सीमा पर दिखाई देता है। ऋग्वेद के एक प्रसिद्ध सूक्त में पशुगत तथा मानवीय स्वभाव के तादातम्य की ओर संकेत किया गया दिखाई पड़ता है। इससे ये भी स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक काल में मनुष्य तथा जीवों के बीच एक निकट संबंध को स्वीकारा जा चुका था। उपनिषदों में यह संबंध और भी निकट तथा सुस्पष्ट दिखाई पड़ता है। छान्दोग्योपनिषद् में कुत्तों की रूपात्मक तथा व्यग्यकथा दी हुई है। इसमें वे अपने भोजन के लिए चिल्लाने वाला नेता ढूँढते हैं। दो हंसों की बातचीत दी गई है जिनके वचनों से सबका ध्यान आकर्षित होता है। जाबालि के पुत्र सत्यकाम को पहले एक वृषभ, फिर एक हंस तदोपरान्त एक जलचर पक्षी के द्वारा उपदेश दिया जाना भी वर्णित है। महाभारत म तो इन कथाओं का प्रारम्भिक रूप पूर्णता को प्राप्त हो जाता है। एक स्थान पर यह सुझाव दिया गया है कि पाण्डवों के साथ वैसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसा कि बुद्धिमान सियार ने अपने साथियों व्याध, चूहे, नेवले और भेड़िए के साथ किया था। जबकि उसने उनकी सहायता से ही प्राप्त की गई लूट की सामग्री में चालाकी से उनको अपने–अपने भाग से वंचित कर दिया गया था। पतञ्जलि द्वारा किए गए लोकान्याय के उल्लेखों से भी ये सहज ही सिद्ध हो जाता है कि उस समय इस प्रकार की कथाओं का पूर्णतः विकास एवं प्रचार हो गया था। यद्यपि कोइ विशिष्ट साहित्यिक रूप अलग से अस्तित्व में नहीं आया था।

इस प्रकार की उपदेशात्मक पशु कथाओं का सर्वांगीण विकसित और प्रौढ़ रूप हमें प्रथम बार स्वतन्त्र रूप में विष्णुशर्मा कृत पंचतन्त्र में प्राप्त होता है जो कि प्रायः हितोपदेश का आधार है। वास्तव में पंचतंत्र की अनुकृति पर लिखे गए अनेक ग्रंथों में से हितोपदेश विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यह

नारायण पण्डित नामक किसी लेखक के द्वारा बंगाल में रचा गया है। इसका उद्देश्य पाटलीपुत्र के राजा सुदर्शन के अल्पमत पुत्रों को नीति की शिक्षा प्रदान करना था। ग्रंथकार का कथन है कि हितोपदेश को पढ़कर संस्कृत भाषा में पटता, वाणी में विदग्धता तथा नीति में दक्षता प्राप्त हो जाती है। हितोपदेश के रचयिता नारायण पण्डित के आश्रयदाता बंगाल के कोई धवलचन्द्र राजा थे। हितोपदेश की एक पाण्डुलिपि 1373 ई. में पाई गई है। अतः उसकी रचना चौदहवीं शताब्दी के पूर्व हो चुकी थी। नारायण पण्डित ने भट्टारकवार (रविवार) के दिन का ऐसे दिन के रूप में उल्लेख किया है, जिस दिन काम नहीं किया जाना चाहिए। इस उल्लेख के कारण इनका काल बहुत पहले नहीं जाना सकता है क्योंकि 100 ई. पू. तक इस शब्दावली के प्रयोग का रिवाज नहीं था। हितोपदेश की रचना बहुत कुछ पंचतन्त्र के आधार पर हुई है। इसकी पस्तावना में भी इस बात को स्वीकार किया गया है

'पंचतन्त्रात्तथाऽन्यस्माद् ग्रन्थादाकृष्य लिख्यते'।

हितोपदेश की 43 कथाओं में से 24 तो पंचतंत्र से ही ली गई हैं। इसमें पंचतन्त्र की राजनैतिक रोचकता का पूर्णरूपेण निर्वाह किया गया है। यद्यपि नारायण पण्डित अपने ग्रंथ में पर्याप्त बातें जोड़ते हैं तो भी 'कामन्दकीय नीतिसार' से विस्तृत अंशों को एकत्रित करने में उनका विशेष अनुराग है। हितोपदेश की केवल सत्रह कहानियां नई हैं। इनमें सात पशु–कथाएं हैं, तीन लोक कथाएं हैं। दो शिक्षाप्रद कथाएं तथा पाँच षड्यन्त्र कथाएं हैं। हितोपदेश में 2/3 भाग तथा 2/5 गद्य भाग मिलता है। हितोपदेश के चार परिच्छेद हैं। 1. मित्रलाभ, 2. सुहृद्भेद, 3. सन्धि, 4. विग्रह। इसमें नारायण पण्डित ने पंचतन्त्र के प्रथम तथा द्वितीय तंत्रों को लेकर उनका क्रम विपर्यय कर दिया। जिमसें हितोपदेश मित्रलाभ से आरम्भ होता है और फिर उससे सहृद्भेद की ओर बढ़ता है। पंचतंत्र की अपेक्षा इसमें पद्यों का बाहुल्य है जो कहीं–कहीं कथा में व्याघात उत्पन्न कर देता है। भारत में हितोपदेश का पठन पाठन पंचतंत्र की अपेक्षा अधिक है। इसमें मानव को हितकारी उपदेश देने के लिए कथाओं और पद्यों का विधान किया गया है। हितोपदेश के तृतीय और चतुर्थ खण्डों में नारायण पण्डित ने अपनी ही रीति से काम लिया। मूलग्रन्थ के तृतीय तंत्र को उन्होंने दो भागों में बांट दिया जिसमें पहला विग्रह तथा

दूसरा सन्धि है। हितोपदेश की कई कहानियों पर शुकसप्तति तथा बेताल–पञ्च–विंशति का प्रभाव देखा जा सकता है। हितोपदेश भी बंगाली के अतिरिक्त अन्य अनेक विदेशी भाषाओं में भी अनुदित हो चुका है।

हितोपदेश के मित्रलाभ परिच्छेद में मानव के संघर्षमय जीवन के सफलतापूर्वक मापन के लिए मित्रों की आवश्यकता, आदर्श मित्रों के लक्षण तथा मित्र प्राप्ति के उपाय आदि से सम्बन्धित कहानियों की योजना है। मित्रलाभ परिच्छेद के चार प्रधान पात्रों काकू, कूर्म, मृग, मूषक के मित्रतापूण व्यवहार से एक–दूसरे की विपत्ति में सहायता करने से सिद्ध किया गया है कि निर्बल साधनहीन तथा धनहीन मित्र भी अपने बड़े भारी कार्य को सम्पन्न करने में समर्थ हो जाते हैं। अतः मित्रों की जीवन में पग–पग पर आवश्यकता होती है।

सुहृदभेद हितोपदेश का दूसरा परिच्छेद है जिसमें राजाओं की नीति रीतियों, उनके राज्य कर्मचारियों के कर्त्तव्यों, राजा एवं प्रजा के परस्पर संबंधों का विशद् विवेचन हुआ है। इसके अतिरिक्त जीवन के व्यावहारिक पत्र की मीमांसा करते हुए इसमें सामान्य जीवन विधियों एवं प्रणालियों का भी सम्यक् निरूपण किया गया है। धूर्त लोग किस प्रकार मित्रों में फूट डालकर अपने कार्य की सिद्धि करते हैं। इसके कई उपाय भी इसमें वर्णित हैं। इसीलिए नित्य जीवन में इसका जितना मूल्य है, उससे कहीं अधिक राजनीति में भी इसकी आवश्यकता पड़ती है। सुहृदभेद में यह तथ्य विशेष रूप से ध्वनित होता है कि किस प्रकार राजा एक ओर अपने राष्ट्र एवं अपने राज्य की रक्षा के लिए अन्य राज्यों से मैत्री करता है और साथ ही साथ अपने शत्रु पक्ष के राजाओं में फूट अथवा वैमनस्य पैदा करके सुहृदभेद द्वारा उनकी संगठित शक्ति को क्षीण कर देता है। सुहृदभेद में प्रायः अन्य आठ अवान्तर कथाओं के साथ एक ऐसी मुख्य कथा का भी उल्लेख है जिसमें दमनक और करकट नामक गीदड़ों ने पिंगलक नामक सिंह तथा संजीवक नामक वृषभ में फूट पैदा करके अपना अधिकार पुनः प्राप्त किया था। इस प्रकार सुहृद्भेद का महत्त्व स्वतः सिद्ध हो जाता है।

मित्रलाभ तथा सुहृद्भेद नामक दो प्रमुख परिच्छेदों के अतिरिक्त विग्रह एवं सन्धि व्यावहारिक, लौकिक तथा राजनैतिक उपदेशों से परिपूर्ण छोटी–छोटी कथाओ से युक्त हितोपदेश के अन्तिम दो अंश हैं जिनमें दो राजाओं में होने वाले युद्ध एवं सन्धि का सम्यक् एवं विशद् विवेचन किया गया है। विग्रह में परस्पर युद्ध के मूल कारणों, सैनिकों, नियमों आदि पर बड़े विस्तार के साथ छोटी–छोटी कहानियों के माध्यम से प्रकाश डाला गया है। इसी के अनुरूप सन्धि में सन्धि की उपादेयता सन्धि के विभिन्न प्रसंगों, इसके अधिकारियों एवं इसकी विविध प्रणालियों का विस्तृत उल्लेख करते हुए उन सभी प्रकार के वैमनस्यों भ्रान्तियों एवं संघर्षों का सन्धि द्वारा हल करने का सन्दर एवं उचित उपदेश दिया गया है। इस प्रकार कथा कहानी के माध्यम से नीतिपरक तथ्यों का कहना जितना रूचिकर लगता है, उतना उपादेय भी। इसलिए हितोपदेश का महत्त्व सर्वतोन्मुखी माना जाता है।

संस्कृत की शिक्षा देने के कारण इसकी शैली सरल व सुबोध है। साथ ही साथ साधारण से साधारण संस्कृतज्ञ भी इसको सुगमता से हृदयंगम कर सकता है। इसी कारण इसका प्रचार तथा प्रसार पंचतंत्र की अपेक्षा अधिक है। जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है। मानव को हितकारी उपदेश देने के लिए कथाओं और पद्यों का इसमें विधान किया गया है। इसमें नीतिविषयक पद्य रामायण, महाभारत, पुराण आदि ग्रंथों से उद्धृत किए गए हैं।

हितोपदेश में मित्रता करने में सजग रहने की प्रेरणा भी सुन्दर ढंग से दी गई है।

परोक्षे कार्यहन्तारं, प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्

वर्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भम् पयोमुखम्।

अर्थात् – सामने प्रिय बोलने वाले और पीछे से काम बिगाड़ने वाले मित्र को मुख पर दूध लगे हुए विष के घड़े की भाँति त्याग देना चाहिए।

मानव–जीवन की सफलता के रहस्य उद्यम के लिए भी मनुष्य को नीति परक पद्य से प्रेरित किया गया है।

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः,

न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।

अर्थात् – उद्यम से ही कार्य सिद्ध होते हैं, मनोरथों से नहीं। सोए हुए शेर के मुख में हिरण स्वयं प्रवेश नहीं करते। दुष्टों और महात्माओं के अन्तर को भी स्पष्ट करते हुए लेखक ने लिखा है

बालकों की शिक्षा की अनिवार्यता की ओर भी सुन्दर पद्य के माध्यम से संकेत किया गया है –

माता शत्रु पिता वैरी येन बालो न पाठितः

न शोभते सभामध्ये हंस मध्ये बको यथा।

अर्थात् – माता शत्रु है और पिता बैरी है। जिसने अपने बालक को नहीं पढ़ाया है। सभा केबीच वह बालक उसी प्रकार शोभा नहीं देता जिस प्रकार हँसों के बीच बगुला।

पंचतंत्र की भाँति इसमें भी सूक्तियाँ अध्यधिक सरल और मुहावरेदार है –

1. मतिरेव बलाद् गरीयसी।

2. सेवाधर्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः ।

3. आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पश्यति।

4. उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।

5. लिखितं अपिललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः ?

निष्कर्ष रूप से हम कह सकते हैं कि हितोपदेश कला की दृष्टि से एवं अपने उद्देश्य को सिद्ध करने के कारण एक महत्त्वपूर्ण कृति है जो शिक्षाप्रद कथाओं के माध्यम से मनसपटल पर नीतिपरक तथ्यों को अंकित करती है।